

असहयोग आन्दोलन एवं स्वराज्य

डॉ० रेखा कुमारी

एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

स्वराज्य की अपनी सामाजिक अवधारणा की अनुरूप ही उन्होंने भारत की राष्ट्रीय राजनीति के दिशा-निर्देशित करने का प्रयास किया। इस प्रसंग में उन्होंने असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन को उन्मुख करने का प्रयास किया। उनके स्वराज्य की सामाजिक अवधारणा के बावत उनके असहयोग आंदोलन के स्वरूप को समझने एवं उसके विभिन्न पहलुओं के प्रति दृष्टिकोण निर्धारित करने हेतु आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इस संबंध में महात्मा गाँधी की व्याख्या एवं खुलासा तथा वास्तविक घटनाक्रमों का संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। गाँधीजी की स्वराज्य सम्बन्धी विचारधारा को आधार प्रदान करने में एवं बाद में भारत में उनकी विचारधारा को आधार प्रदान करने में एवं बाद में भारत में उनकी उपलब्धियों में उनके दक्षिण अफ्रीका (1893-1914) के अनुभवों का अनेक रूपों में योगदान रहा। 1906 तक एक उदीयमान वकील एवं राजनीतिज्ञ के रूप में गाँधीजी नेटाल में भारतीयों को प्रभावित करनेवाले सामाजिक नस्ली भेदभाव के विरुद्ध प्रार्थना एवं योजना की सामान्य 'नरमदलीय' तकनीकी का ही प्रयोग करते रहे थे।

दक्षिण अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण विभिन्न धर्मों, समुदायों और वर्गों के लोग इन आंदोलनों में एकजुट होकर खड़े हुए : इनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी, पारसी, गुजराती और दक्षिण भारतीय भी, उच्च वर्ग के व्यापारी और वकील भी, तथा न्यू कैंसिल के खान-मजदूर भी। इस बात पर विशेष बल दिया जाना चाहिए कि दक्षिण अफ्रीका के इस अनुभव के कारण गाँधीजी भारत में अपने राजनीतिक जीवन के आरंभ में ही उन अन्य राजनीतिज्ञों की अपेक्षा अखिल भारतीय स्तर पर अधिक मान्य हुए जिनके आधार मूलतः आंचलिक थे। गाँधीजी आजीवन जिस हिंदू-मुस्लिम एकता की

आवश्यकता और संभावना को मानते रहे, उनका आधार निश्चय ही दक्षिण अफ्रीका के उन आंदोलनों में था जिनमें मुसलमान व्यापारी अत्यधिक सक्रिय रहे थे। दक्षिण अफ्रीका ने गाँधीजी को सामाजिक अंतराष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। यह एक ऐसी बात थी जो तब किसी भी अन्य नेता के संबंध में सोची भी नहीं जा सकती थी।

मूल गाँधीवादी पद्धति का निरूपण दक्षिण अफ्रीका में 1906 के पश्चात् हुआ। इसके लिए अनुशासित कार्यकर्ताओं को बड़ी सावधानी से प्रशिक्षण देने की आवश्यकता थी। इसके लिए अहिंसक सत्याग्रह की आवश्यकता थी जिसके अंतर्गत विशिष्ट कानूनों के शांतिपूर्ण उल्लंघन की, सामूहिक गिरफ्तारियाँ देने की, कभी-कभार हड़ताल करने एवं शानदान मार्च निकालने की योजनाएँ थी। इनमें स्पष्ट रूप से विचित्र तरीके अपनाने के साथ ही संगठनात्मक एवं विशेषकर वित्तीय बातों पर ध्यान दिया जाता था। वार्ताओं और समझौतों के लिए तत्परता के परिणामस्वरूप कभी-कभी आंदोलन को अचानक ही एकतरफा ढंग से वापस भी ले लिया जाता था जिसे लोग पसंद नहीं करते थे।

अहिंसा और सत्याग्रह गाँधीजी के लिए गहन रूप से अनुभूत एवं प्रयुक्त दर्शन था जिसका कुछ श्रेय इमर्सन, थोरो और तॉलस्टॉय को था, किन्तु इसमें पर्याप्त मौलिकता भी थी। उनका विचार था कि मानव जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज है और चूँकि कोई भी अंतिम सत्य को पा लेने का दावा नहीं कर सकता, अतः किसी व्यक्ति का सत्य की अपनी अनिवार्यतः आंशिक समझ को हिंसा द्वारा दूसरों पर लादना पापपूर्ण है। राजनीतिज्ञ के रूप में और केवल संत के रूप में नहीं, गाँधीजी व्यवहार में कभी-कभी इस मामले में समझौता भी कर लेते थे और पूर्ण अहिंसा पर बल नहीं देते थे (जैसाकि 1918 में उन्होंने इस आशा से सैनिक भारती का समर्थन किया कि युद्ध के बाद अंग्रेज सरकार विशेष राजनीतिक रियायतें प्रदान करेगी), और उनका बार-बार इस बात पर बल देना कि अन्याय के समक्ष कायरतापूर्ण समर्पण करने से हिंसा का मार्ग अपनाना कहीं अच्छा है, उनके सिद्धांत की व्याख्या करने में बड़ी समस्याएँ उत्पन्न कर देता है। किंतु, इतिहास की दृष्टि से इस वैयक्तिक दर्शन (जिसे पूर्णतः स्वीकार करनेवाले उनके थोड़े से शिष्य ही थे) से कहीं अधिक

महत्वपूर्ण था वह ढंग जो इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली नियंत्रित जन-भागीदारी को भारत के सामाजिक रूप से निर्णायक वर्गों के हितों एवं भावनाओं से वस्तुनिष्ठ ढंग से जोड़ता था। गाँधीजी के पूर्ववर्ती भारतीय राजनीतिज्ञ, नरमदलीय 'भिखमंगी' नीति और व्यक्तिगत आतंकवाद के बीच दुलमुलाते रहते थे। इसका कारण मूलतः यह था कि अनियंत्रित जन-आंदोलनों के प्रति वे सामाजिक रूप से भयभीत थे। गाँधीवादी स्वराज्य पद्धति व्यापारी वर्गों को, साथ ही कृषकों के अपेक्षया समृद्ध अथवा स्थानीय प्रभुतासंपन्न भागों को भी स्वीकार्य थी। ये वे लोग थे जिन्हें राजनीतिक संघर्ष के उच्छृंखल एवं हिंसक सामाजिक क्रांति में परिवर्तन हो जाने से पर्याप्त हानि उठाने का भय था। गाँधीजी एवं गाँधीवादी कांग्रेस ने अनिवार्यतः एकताकारी और 'छतरी' वाली सामाजिक स्वराज्य की भूमिका को अपनाया था- आंतरिक सामाजिक संघर्षों में मध्यस्थता करना, किन्तु साथ ही जिसमें कभी-कभी पीछे भी लौटना पड़ता था, और जिसके फलस्वरूप कभी-कभी बड़े भारी धक्के भी लगते थे, इसे गाँधीजी सामाजिक समरसता की शिक्षा कहते थे।

मुख्य भाग में कहा गया है "भारत का उद्धार तभी हो सकता है जब वह सब कुछ भुला दिया जाए जो उसने पिछले 50 वर्षों में सीखा है। रेल, तार, अस्पतालों, वकीलों, डॉक्टरों जैसी वस्तुओं और लोगों को जाना होगा और तथाकथित उच्च वर्ग के लोगों को सायास और नियमपूर्वक किसानों का सादा जीवन बिताना होगा।

इसमें संदेह नहीं कि हिंद स्वराज में प्रस्तुत गाँधीवादी सामाजिक आदर्शों को भारत या संसार के कष्टों को दूर करने के उपाय के रूप में कभी परिष्कृत, शहरी लोगों को आकर्षित नहीं किया। 1930 और 1940 के दशकों में ये लोग औद्योगीकरण पर आधारित पूँजीवादी अथवा समाजवादी समाधानों की ओर अधिकाधिक आकर्षित होने लगे थे। किन्तु, गाँधीजी की परिकल्पना उस प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जो 'आधुनिकीकरण' के गहरी बेगानगी उत्पन्न करनेवाले प्रभावों ने, विशेषकर औपनिवेशिक परिस्थितियों में, उत्पन्न की थी। कारखानों से बर्बाद हुए कारीगर, किसान जिसके लिए न्यायालय खतरनाक फंदे थे और शहरी अस्पतालों में जाना प्रायः महँगा

मृत्युदंड होता था, साथ ही ग्रामीण एवं कस्बाती बुद्धिजीवी जिन्हें शिक्षा से कोई लाभ नहीं मिला था- इन सबके लिए, कुछ समय के लिए ही सही, उद्योग-विरोधी विचार वस्तुतः आकर्षक थे। स्वदेश लौटने पर गाँधीजी ने खादी, ग्रामों में रचनात्मक कार्यों एवं (कुछ समय पश्चात्) हरिजन-कल्याण के माध्यम से अपने स्वराज्य के सामाजिक संदेश को मूर्तरूप दिया। सुमित सरकार की मान्यता है कि इनमें से कोई भी कार्यक्रम ऐसा नहीं था जो सामाजिक अथवा आर्थिक संबंधों में परिवर्तन लाकर समस्याओं का कोई वास्तविक समाधान कर सकता, किन्तु, वे यह स्वीकार करते हैं कि निष्ठावान् एवं समर्पित गाँधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओं द्वारा लगन और धैर्य के साथ प्रयुक्त किए जाने पर ये कार्यक्रम ग्रामीण लोगों की स्थिति को कुछ सीमा तक अवश्य सुधार सकते थे। इस प्रकार स्वराज्य के स्वदेशी आंदोलन की आत्मनिर्भरता एवं स्वावलंबन के संदेश को एक विस्तृत आयाम प्राप्त हुआ। यह कहना आवश्यक है कि किसानों के बीच गाँधीजी की लोकप्रियता बढ़ाने में उनकी शैली भी पर्याप्त सहायक हुई: तीसरी श्रेणी में यात्रा करना, आसान हिन्दुस्तानी में बोलना, 1921 के पश्चात् केवल लँगोटी पहनकर रहना, और तुलसीदास के रामचरितमानस के बिंब विधान की प्रयुक्त करना जो उत्तरी भारत के हिंदू जनमानस में गहन रूप से पैठा हुआ था।

यह गाँधीजी के स्वराज्य की सामाजिक समरसता का सिद्धान्त तथा इसकी व्यावहारिक उपयोगिता के प्रति आश्वस्तता थी कि अनेक लोगों ने तत्कालीन विशुद्ध राजनीतिक स्वराज्य की अवधारणा को त्याग कर गाँधीजी के सामाजिक आर्थिक स्वराज्य की अवधारणा के प्रति अपनी सहमति जताई और गाँधीजी के साथ ही लिए। अंग्रेज इस समय के विशुद्ध राजनीतिक आन्दोलनों से उतना भयभीत नहीं थे जितना कि वे गाँधीजी के सामाजिक आर्थिक कार्यक्रमों से, जिसने भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में नई जान फूँक दी थी जिस बात से ब्रिटिश अधिकारी ओ डायर एवं अन्य ब्रिटिश अधिकारी अत्याधिक डरे हुए प्रतीत होते थे, वह थी-1919 के आरंभ में हिन्दू-मुसलमान-सिखों की अभूतपूर्व एकता, वह भी ऐसे प्रांत में जो इसके पहले और बाद में सांप्रदायिक अलगाव के लिए जाना जाता था। अमृतसर में 30 मार्च और 06 अप्रैल को

हुई हड़तालें शांतिपूर्ण, किन्तु जबरदस्त थीं और 09 अप्रैल को निकले रामनवमी के जुलूस का वर्णन करते हुए हंटर आयोग ने कहा था कि इसमें “मुसलमानों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया था।” हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देनेवाला एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन-विभिन्न समुदायों के लोग खुलेआम हमप्याला हो रहे थे।”

गाँधी जी के पक्ष में कहा जा सकता है कि उन्होंने पहले ही बारंबार चेतावनी दी थी कि वे केवल एक विशिष्ट प्रकार के और नियंत्रित जन-आंदोलन का ही नेतृत्व करने के लिए तैयार हैं, और वर्ग-संघर्ष या खूनी सामाजिक क्रांति में उनकी कतई कोई दिलचस्पी नहीं है। जनसामान्य गाँधी स्वराज के स्वप्न से अनुप्राणित हुआ था। लोगों में अपने-अपने ढंग से, विभिन्न, यहाँ तक कि लगभग क्रांतिकारी रूपों में उसकी व्याख्या की थी, किन्तु फिर भी मार्गदर्शन के लिए वे गाँधीजी की ओर ही देखते थे।

ब्रिटिश सरकार, जो लगभग सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर चुकी थी, अब तक गाँधीजी पर हाथ डालने का साहस नहीं कर सकी थी। उसी सरकार ने हिम्मत करके 10 मार्च 1922 को उन्हें गिरफ्तार करके 6 साल की कैद की सजा दे दी। न्यायालय में एक शानदार भाषण देकर गाँधीजी ने उस अवसर को स्मरणीय बना दिया “अतः मैं यहाँ आया हूँ और अपने-आपको प्रसन्नतापूर्वक उस कठोरतम दंड के लिए प्रस्तुत करता हूँ जो कानून की दृष्टि में सायास अपराध किए जाने पर दी जाती है, किन्तु जो मेरी दृष्टि में एक नागरिक का सर्वोच्च कर्तव्य है। ” चौरीचौरा कांड के बाद असहयोग आंदोलन के स्थगन पर उस समय कांग्रेस के अनेक नेताओं ने तथा बाद में मार्क्सवादी इतिहासकारों ने गाँधीजी की भारी आलोचना की कि वे क्रांतिकारी शक्तियों के घोर दुश्मन थे, क्योंकि देश में क्रांतिकारी किसान वर्ग देश को स्वतंत्र कराने की हैसियत रखते थे। उनका वह असहयोग आंदोलन उनकी सामाजिक स्वराज्य की अवधारणाओं से मेल नहीं खा रहा था, जनता उसे अपने-अपने ढंग से समझकर उनमें तोड़-मरोड़ कर रही थी और अंत में तो जनता ने उग्र हिंसक रूप ही ले लिया, जो गाँधीजी के स्वराज्य की अवधारणा के बिल्कुल विपरीत था। गाँधीजी हिंसक एवं अनियंत्रित स्वराज्य के

पक्ष में कभी नहीं रहे और वे अच्छी तरह जानते थे कि इस तरह की स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं था जो समाज में हमेशा के लिए अशांति एवं संघर्ष का बीज बो दे।

संदर्भ सूची :

1. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ0 212.
2. वही, पृ. 212-213.
3. सुमित सरकार, पूर्वोक्त में उद्धृत, पृ. 213.14.
4. वही, पृ. 214.
5. वहीं,
6. भारत सचिव के नाम वायसरॉय रीडिंग का पत्र 13 अक्टूबर, रीडिंग कलेक्शन, सुमित सरकार, पूर्वोक्त में उद्धृत, पृ. 215.
7. होम पोलिटिकल फाइल, फरवरी 1921 सं. 13 एन.ए. आर्क, नई दिल्ली.
8. उदाहरणार्थ बिहार में स्वामी विद्यानन्द तथा स्वामी सहजानन्द की उक्तियाँ को देखें, स्टीफेन हेनिंगम, पिजेन्ट मूभमेंट इन कोलोनियल इंडिया, ए.एन. यू. 1982, पृ. 74 स्वामी सहजानन्द, मेरा जीवन संघर्ष, (स0) अवधेश प्रधान, ग्रंथ शिल्पी, 2000, पृ.226.
9. सुमित सरकार, पूर्वोक्त 216.